IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 3, Issue 1, March 2020
Impact Factor: 4.819

अपभ्रंश भाषा का साहित्यिक एवं भाषिक परिचय

लालजीत राम
असि० प्रोफेसर- हिन्दी,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
आलापुर, अम्बेडकरनगर, उ०प्र०

शोध सारांश:- अपभ्रंश भाषा भारतीय आर्य भाषाओं के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जो प्राकृत और आधुनिक हिंदी के बीच सेतु का कार्य करती है। इस शोध में अपभ्रंश भाषा का साहित्यिक एवं भाषिक परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसमें इसकी उत्पत्ति, विकास, ध्वन्यात्मक, रूपात्मक एवं व्याकरणिक विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, जैन और लौकिक साहित्य में अपभ्रंश के योगदान को रेखांकित किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश ने हिंदी साहित्य अन्य आधुनिक भाषाओं की संरचना और अभिव्यक्ति को गहराई से प्रभावित किया है, जिससे इसका ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक महत्व सिद्ध होता है।

मूल शब्द– च्युत, तुष्यन्ति, म्लेच्छ, पतित, परिनिष्ठित, बयना, पसरेइ, अक्खर, देइ।

भाषा बहता नीर के समान है. काल एवं भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार भाषा में परिवर्तन होता रहता है। अपभ्रंश भाषा का आरम्भ प्राकृत भाषा के बाद से माना जाता है, जिसमें एक तरफ संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हुए तो दूसरी तरफ अपभ्रंश के महान साहित्यकारों ने जन्म लिया। इन्हीं के समकालीन बौद्ध, सिद्ध एवं जैन संत अनेक धर्म प्रवर्तक कवियों का आविर्भाव हुआ। सभी कवियों ने प्रगति एवं परम्परा का सहज समन्वय स्थापित किया। संस्कृत आचार्यों ने वेद, पुराण एवं अलंकृत पद्धतियों के अनुकूल काव्य का सृजन किया, वहीं अपभ्रंश साहित्यकारों ने प्रचलित देशी भाषा एवं जनपदीय विभाषाओं में धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और समाज आदि सभी क्षेत्रों में क्रान्ति उपस्थित की।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 3, Issue 1, March 2020
Impact Factor: 4.819

अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ विकृत, च्युत अथवा भ्रष्ट है। प्राकृत काल में संस्कृत शब्दों के जो रूप जन विभाषाओं में तद्भव होकर प्रचलित थे, विद्वानों की दृष्टि में सामान्यतः वे अशुद्ध या भ्रष्ट माने जाते थे। इन्हीं अपाणिनीय शब्दों को अपभ्रंश नाम देकर विद्वानों ने अपना हीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। अपभ्रंश भाषा का विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाय तो प्रायः छठी शती ईस्वी के आस-पास मिलता अपभ्रंश काव्य परंपरा में पूर्ववर्ती संस्कृति तथा प्रकृति की परंपरागत काव्य रूढ़ियों का अभाव तो नहीं मिलता परंतु अभ्यारांश के कवियों ने संस्कृति तथा प्रकृति कार्यों की परंपरागत का विरोधियों का अंधानकरण ना करके अपनी सुविधा के अनुसार नए प्रयोग किए हैं।1 प्राकृत-वैयाकरणों में चण्ड सर्वप्रथम माने गये, जिन्होंने स्पष्ट रूप से अपभ्रंश का नामोल्लेख किया है। संस्कृत अलंकारवादी आचार्य भामह को अपभ्रंश के प्रथम नामोल्लेख का श्रेय है। सभी आचार्यों के साथ बलमी के राजा धरसेन द्वितीय ताम्र पत्र से भी अपभ्रंश नामक भाषा का पुख्ता प्रमाण प्रस्तुत किया है, धरसेन द्वितीय ने अपने पिता गुहसेन को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के प्रबन्ध रचनाकारों में श्रेष्ठ बताया है। सभी साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित किया जाता है कि ईशा की छठीं शताब्दी तक आते-आते भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग होने लगा था। संस्कृत अलंकारवादियों ने अपभ्रंश में रचना की है। वस्तुतः सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि संस्कृत और प्राकृत के बाद अपभ्रंश को जो तीसरा स्थान दिया गया है, शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि किसी प्राकृत को नहीं प्राप्त हुआ है।महाकवि पुष्प दांत निश्चित ही अपने पूर्ववर्ती अभ्यारांश के महाकवि स्वयंभू देव की तरह ही प्रकृति-चित्रण मैं सिद्ध हस्त और निष्णात कभी रहे हैं।2 अपभ्रंश दो शताब्दी पूर्व अपाणिनीय अपशब्द से सम्बोधित किया जाता था. वहीं ईशा की छठीं शताब्दी तक आते-आते अपभ्रंश भाषा ने साहित्यिक रूप धारण कर लिया। पतंजलि और भरतमुनि के समय तक अपभ्रंश का निश्चित स्वरूप नहीं था। पण्डित वर्ग संस्कृत साधु शब्दों के अतिरिक्त सभी शब्दों को विकृत, अपभ्रष्ट, अपभ्रंश, विभ्रष्ट या अपशब्द कहता था। इस प्रकार के रूपों को संस्कृत आचार्य सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते थे। कदाचित अपभ्रंश या अपभ्रष्ट नाम से भी यही ध्वनि निकलती थी। धीरे-धीरे इन विभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग काव्यों में होने लगा। भामह और दण्डी के समय तक अपभ्रंश में रचना होने लगी। अपभ्रंश विद्वानों का राजसभाओं में सम्मान होने लगा। अपभ्रंश को काव्य की भाशाओं में सम्मान के साथ उल्लेख किया जाने लगा। देश में भेद-भाव एवं रहन-सहन के अनुसार अपभ्रंश के अनेक उपभेद थे, जैसे अपभ्रंश और आभीर गुर्जरों का सम्बन्ध तथा अपभ्रंश के विभिन्न भेद।

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

'अपभ्रंशेन' नान्येन स्वेन तुष्यन्ति गुर्जराः।' अर्थात गुर्जरों को अपनी-अपनी भाषा ही अच्छी लगती है। रामशर्मा वागीश के अनुसार गौर्जरी भी अपभ्रंश के 25 भेदों में से एक है। अमरकोश में आभीर शब्द को गोप, गोपाल, गोसंख्य एवं बल्लभ का पर्यायवाची कहा गया है।महाकवि पुष्पदन्त के समय का स्पष्ट रूप से उल्लेख हमें कहीं नहीं मिलता फिर भी जैन साहित्य के प्रख्यात विद्वान डॉ०पी. एल. वैद्य ने महाकवि पुष्पदंत के ग्रथ में आए विभिन्न उल्लेखों के आधार पर उन्हें दसवीं शताब्दी का कवि माना है।**3**

प्राचीन भारतीय साहित्य में अपने आभीरों के उल्लेख से अनुमान लगाया गया है कि ईस्वी सन् के पूर्व की शतियों या आरम्भ की शतियों में यह बाहर आये थे, भिन्न कुल के होने के कारण ही कदाचित उन्हें म्लेच्छ, वर्णसंकर सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसका प्रधान केन्द्र पश्चिम प्रदेश मथुरादि रहे है। पशुपालन ही इस जाति का मुख्य साधन रह है। आभीर जाति की प्रधानता के कारण उनकी भाषा की ओर भी कदाचित ध्यान गया होगा। भरत ने आभीरों की बोली को विभाषा कहा है। भरत ने हिमवत् सिन्धु, सौवीर आदि पश्चिमी प्रदेश की भाषा को उकार बहुला बताया है। आभीरों का क्षेत्र पश्चिम प्रान्त रहे हैं। अतः गुर्जरों का सम्बन्ध उकार बहुला बोली से स्थापित किया जा सकता है और अपभ्रंश की एक प्रमुख विशेषता उकार बहुला होना भी है। आभीरों ने संस्कृत या आर्यभाषा को अपने ढंग से प्रयोग करके एक नया रूप दिया और पण्डित वर्ग ने उसे पतित कहकर अपभ्रंश नाम दिया। दण्डी ने सम्भवतः इसी परम्परा का उल्लेख करते हुए आभीरादि की गिरा को अपभ्रंश बताया है। आभीर के साथ आदि पदांश का अर्थ टीकाकारों ने गुर्जरादि किया है। भोज ने भी जो अपभ्रंश से गुर्जर के पुष्ट होने की बात कही है, वह निश्चित ही किसी प्राचीन परम्परा के आधार पर कही होगी।

अपभ्रंश विद्वानों के अनुसार स्पष्ट होता है कि अवहट्ट शब्द का प्रयोग परवर्ती अपभ्रंश के लिए किया गया है, जो परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा में ढल चुकी थी और उसके रूपों में परिवर्तन हो चुका था, जिस प्रकार अपभ्रंश के कवि अपशब्दों के प्रति होशियार थे और इसके बदले में अपशब्दों से अलग देशी भाषा का परिचय दे रहे थे, उसी प्रकार अवहट्ट के कवि भी अपभ्रंश से अलग देशी भाषा का परिचय दे रहे थे, उसी प्रकार अवहट्ट के कवि भी अपभ्रंश और अवहट्ट के प्रति सावधान थे। उसी स्वर से देशी भाषा का गान कर रहे थे। अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध कवियों में महाकवि पुष्पदन्त का नाम अपभ्रंश के आदि महाकवि माने जाने वाले कवि स्वयंभू देव के पश्चात सर्वोपर

ISSN: 2581-9429
Volume 3, Issue 1, March 2020
Impact Factor: 4.819

सम्मान के साथ लिया जाता है।**4** अधिकतर विद्वान इस बात से सहमत है कि कीर्तिलता की अवहट्ट भाषा मैथिली अपभ्रंश का ही परवर्ती रूप है। अपभ्रंश के कवि अब्दुल रहमान ने अवहट्ट का उल्लेख स्वतंत्र भाषा के रूप में किया है।**5**

डॉ. शिवकुमार सिंह के अनुसार "हमारे विचार से अवहट्ट परवर्ती अपभ्रंश का वह रूप है, जिसके मूल में परिनिष्ठित अपभ्रंश यानी शौरशेनी है। विद्वान वर्ग विशेष प्रचार के नाते इसमें कई रूप बताते है। परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ट भिन्न-भिन्न स्थानों की क्षेत्रीय भाषाओं से प्रभावित है।"

डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने इसे और भी स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "कीर्तिलता प्राच्य अपभ्रंश का विशेषतः अवहट्ट का स्मरणीय दर्शन है। अपभ्रंश की कालसीमा ईशा की पांचवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक है।" तेरहवीं शताब्दी में भी आधुनिक आर्यभाषाओं का पृथक अस्तित्व दिखाई देने लगता है। है। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी संक्रान्ति काल है। इसी काल में परिनिष्ठित अपभ्रंश लौकिक भाषाओं के साथ सम्मिश्रण हुआ, इसी को अवहट्ट कहा जाता है। जैसा विद्यपति ने 'देसिल बयना' इस पद्य में निर्दिष्ट किया है। कीर्तिलता का यह पद्य परिनिष्ठित अपभ्रंश का उदाहरण माना जाता है।

तिहुवण खेतहिं काइं तसु किंत्तिवल्लि पसरेइ।
अक्खर खंभारंभ जउमंच बंधि न देइ ।।

वस्तुतः लोकभाषा में कीर्तिलता व कीर्तिपताका की रचना पर भले ही मैथिली का प्रभाव हो, किन्तु अपभ्रंश से यह सर्वदा अछूती नहीं है। अतः भाषा विषयक स्थिति निर्दिष्ट करने हेतु अवहट्ट शब्द का प्रयोग किया जाता है।**6**

अपभ्रंश साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है। इसका अधिकतम भाग वर्तमान समय में जैन भण्डारों में सुरक्षित है। अतः प्रत्येक आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का पूर्ववर्ती रूप अपभ्रंश साहित्य में देखा जा सकता है। शौरशेनी अपभ्रंश का साहित्य सबसे अधिक मिलता है। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध तथा पश्चिमी, पूर्वी, दक्षिण मध्य प्रदेश सभी स्थानों के कवियों ने अपभ्रंश भाषा में साहित्य रचना आरम्भ की और शीरशेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा बन गयी। इसी कारण पूर्व में वियापति और सिद्धों ने भी उसमें रचना की तथा कुछ रचनाओं में अवधी का भी प्रभाव देखा जाता है। जिन प्रदेशों में अपभ्रंश साहित्य की रचना हुई, उसका वर्गीकरण विद्वानों ने निम्न रूपों में किया है। पश्चिमी प्रदेश में शौरशेनी अपभ्रंश, हिन्दी और गुजराती का प्रतिनिधित्व, कालिदास की

विक्रमोवर्शीय की अपभ्रंश पद्य, स्वयंभू, योगीन्द, देवसेन, रामसिंह, धनपाल, भोज, नयन्दि, धनन्जय, रयधू आदि कवि गुजरात एवं पश्चिमी प्रदेश के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं।

जिस प्रकार संस्कृत भाषा और साहित्य सम्बन्धी अनुशीलन का अभिनव उत्साह आधुनिक सांस्कृतिक पुनरुत्थान का मंगलाचरण है, उसी प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश में क्रमशः बढ़ती हुई रुचि का बोधक है। अपभ्रंश का अब तक जितन साहित्य प्राप्त हुआ है, उसका अधिकांश साहित्य केवल दिगम्बर जैन धर्म प्रेरित एवं प्रभावित है। फिर भी विभिन्न मत के आधुनिक विद्वानों की दिलचस्पी अपभ्रंश भाषा और साहित्य में बढ़ती जा रही है क्योंकि धीरे-धीरे यह मत प्रतिष्ठित होता रहा है कि अपभ्रंश सम्पूर्ण उत्तर भारत के सामान्य लोकजीवन के परस्पर भाव विनिमय और व्यवहार की बोली रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

01- पुष्पदंत- योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण' -साहित्य अकादमी नई दिल्ली- पृ० सं०**90**

02- वहीं पृ० सं०-**78**

03- वहीं पृ० सं०-**39**

04- वहीं पृ० सं०-**27**

05- डा० शंभूनाथ पांडे- अपभ्रंश और अवहट्ट :एक अन्तर्यात्रा, पृ०सं० **25**

06- डॉ० देवेंद्र कुमार शास्त्री-अपभ्रंश भाषा साहित्य की शोध प्रवृत्तियां- पृ० सं०- **49**